R: S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ।।

मनुष्य बनो

वर्ष ३९ | मई १९९० | अङ्क ८

सतगुरु स्वरूप

साधो गुरु का रूप लखाऊँ,
जो कोई आवे मेरी सभा में, गुरु का रूप दिखाऊँ ।।
सत रज तम के हद से बाहर, गुरु मूरति दर्शाऊं ।।
निर्गुन सगुन देह नहीं जाके, अद्भुत भेद बताऊं ।।
हाड़, माँस, नाड़ी नहिं जाके, वाके रूप न नाऊं ।।
सबा सबका में सबसे न्यारा, मर्म विचित्र जताऊं ।।
रूप अरूप स्वरूप अनूपा, निराकार ठहराऊं ।।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी,पल पल गुरु गुन गाऊं ।।

o:o: —

(माह अप्रैल के पेज ३५ से आगे)

सुमिरन ध्यान

परमसन्त दयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

इसलिये जन साधारण के लिये सुमिरन ध्यान की शिक्षा है तुमको परमार्थ की चाह है तो सबसे पहिले सत्संग में जाओ गुरु या आचार्य कहें तो नाम लो नहीं तो सत्संग करो।

सुमिरन ध्यान से यह लाभ होगा कि सत्संग करने के पश्चात मन को शुद्ध बनाओगे। फिर तुम जिस रूप का ध्यान करोगे या करते हो वह रूप तुम्हारे मन की शुद्धताई के अनुसार तुमको जो कुछ आगे करना है वह बता देगा, जैसे कि इंदौर वाली स्त्री को मेरे रूप में उसके मन ने बता दिया था कि तू ८ दिन बाद मर जायेगी।

इसलिये बार बार कहता हूँ कि अपने संकल्प को ठीक रक्खो अर्थात् तुम्हारे संकल्प में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अहिंसा आदि के अशुभ भाव न हों। जिस गुरु से नाम लिया है और जिसका ध्यान करते हो उसको पूर्ण मानकर उसी का ध्यान करो। उसको मत बदलो। जो रूप तुम्हारे अन्तर में प्रगट होता है उसे पकाओ अर्थात् उस रूप में टिकाव हो। यह न हो कि क्षण मात्र को रूप दिखाई दिया फिर विलीन हो गया बल्कि वह रूप तुम्हारे ध्यान में टिकने लगे। तुम्हारा मन शुद्ध होने पर तुमको सीधे रास्ते पर ले आयेगा। कुछ विशेष परिश्रम नहीं करना है। यह सहज योग है। इस तरह मन धीरे-धीरे काबू में आता जायेगा।

गुरु

गुरु नाम है ज्ञान का, विवेक का, मगर इसकी समझ बाहरी पुरुष से आती। गुरु अविनाशी है। गुरु देह का नाम नहीं हैं। बल्कि गुरु वह है जिसकी स्तुति पहिले सत्संग में प्रार्थना के

शब्द में है। इसलिये किसी बाहरी पूर्ण पुरुष के बिना तत्व की समझ नहीं आती।

गुरु किया है देह को, सतगरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर की धार में, फिर फिर गोता खाहिं।।
गरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अन्ध।
होंय दुखी संसार में, आगे जम का फन्द।।

इसकी पुष्टि नीचे वाले शब्द से भी होती है।

गुरु मध्य आदि अनन्त, अद्भुत अमल अगम अगोचरम्।
विभु विरज पार अपार निर्गुन, सगुन सत्य विशेश्वरम्।।
जेहि मति लखे नहिं तेहि लखे, सो शुद्ध तत्व विचार है।
जो चरण कंवल की ओट आया, भब से बेड़ा पार है।।
गुरु विष्णु मूरति शिव की सूरत, गुरु को ब्रह्मा जान तू।
गुरु ब्रह्म हैं परब्रह्म हैं, यह सोच समझ के मान तू।।
कर गुरु की संगत रात दिन, नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फैंक माया बोझ सिर से, यम का शीश न भार ले।।
शीश दे तन मन को दे, गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
राधास्वामी भेद बतायें तुझको, हिये तराजू तोल ले।।

वह गुरु जिसका वर्णन इस शब्द में आया है वह है शुद्ध तत्व विचार। यह शुद्ध तत्व विचार जिस पुरुष में हों वही पूर्ण पुरुष कहलाता है इसलिए वह शुद्ध तत्व विचार वह जब प्राप्त होगा किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग से। उनके वचन मानने और उन पर चलने से लोक परलोक दोनों सुधर सकते हैं। जो सत्पुरुष होते हैं ये नाना प्रकार के जीवों को चिता कर अपने जैसा बनाना चाहते और परम तत्व की प्राप्ति का उपाय बताते हैं। वह सबको एक ही तरीका या ढंग नहीं बताते। वे प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति और परिस्थितियों के अनुसार हिदा-

यत देते हैं। उनका वाक्य ही मूल मन्त्र है।

इसके दो उदाहरण देता हूँ ताकि बात स्पष्ट हो जाय।

मैं अपने छोटे भाई को दातादयाल महर्षि शिव के दरवार में नाम दान के लिये ले गया। नाम दान दिया गया। उसका नाम भी बदला गया। उसके अन्दर प्रकाश होने लगा घंटा का शब्द होने लगा। फिर महाराज ने कहा कि सुरेन्द्र काम करो कमाओ खाओ। आखरी वक्त में तुमको नाम की प्राप्ति हो जायेगी। मेरे भाई राय साहब हुए और चीफ ट्रैफिक मैनेजर रेलवे के पद से अब रिटायर्ड हो गये हैं। अब घरेलू परिस्थितियों ने वैराग्य उत्पन्न कर दिया है।

श्री हरस्वरूप गुप्त के पिता सत्संगी थे। उन्होंने दाता दयाल से प्रार्थना की कि लड़के को नाम दान दे दिया जाय। उन्होंने नाम दिया और कहा कि शादी करो, कांम करो पिछला उम्र में स्वयं काम वन जायेगा।

मेरी समझ में जो कुछ है वह पूर्ण पुरुष का सत्संग और उसके वचन को मानना ही मुख्य है। इसी में कल्याण है।

गुरु जो कहें सो हित कर मान।
गुरु जो कहूँ सो चित कर ध्यान॥

पूर्ण पुरुषों का मंजिले मकसूद (इष्ट पद) इस शब्द से प्रगट होता है।

हंसा लोक हमारे अइहौ, ताते अमृत फल तुम पइहौ।
लोक हमारा अगम दूर है, पार न पावे कोई।
अति आधीन होय जो कोई, ता को देऊं लखाई। ॥
मिरत लोक से हंसा आये, पहुप दीप चलि जाई।
अंबू दीप में सुमिरन करिहौ तब वह लोक दिखाई॥

– शेष पृष्ठ ६८ पर

मासिक सन्देश

परम सन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वरचन्द्र शर्मा

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश परम प्रिय सत्संगियो !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

मैं आपको यह मासिक सन्देश दो महीने के बाद दे रहा हूं । वास्तव में, मैं २२ जुलाई, १९८९ से लगातार देशी और विदेशी दौरे पर रहा हूँ । इस समय के दौरान मैं मुश्किल से होशियारपुर केवल एक या दो बार ज्यादा से ज्यादा ६ दिन तक रहा हूँ । मैंने फरवरी के मासिक सन्देश में आपको अमेरिका के दौरे के सम्बन्ध में ११ सितम्बर १९८९ तक की सूचना दी थी । मैं उसी रात को ११ बजे ट्रिनीडाड के पोर्ट आफ स्पेन के अड्डे पर पहुचा । वहाँ पर मेरे परमप्रिय विश्वामित्र मराज और सान फर्नांडोंज के कृष्ण मन्दिर के मुख्य अधिकारी श्री यतीन्द्र राम प्रसाद मुझे लेने के लिये आये हुए थे । उनका उस समय ५० मील दूर से मुझ लेने के लिये आना और आधी रात को मुझ सानफर्नाडो ले जांना यह जाहिर करता है कि उनका प्रेम और उनका मानवता धर्म में विश्वास अटूट और अगाध है । वास्तव में ही वे लोग बड़े जिज्ञासु हैं ।

मैंने आपको श्री विश्वामित्र मराज और उनके परिवार के सम्बन्ध में अनेक बार मासिक सन्देश में विस्तार पूर्वक बताया है और उनके पत्र व्यवहार को भी आपके मार्गदर्शन के मानव मन्दिर में छपवाया है। श्री विश्वामित्र मस्ती में और सन्तमति में रहते हैं, किन्तु यह अपने व्यापार में और साँसारिक व्यवहार में भी कुशल हैं। मैं समझता हूँ कि ऐसे आदर्श मानववादी जो परमदयाल जी के निकट सम्पर्क में आये हैं, बहुत कम हैं। इनका मेरा आध्यात्मिक सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हैं इसलिये जब हम मिलते हैं तो ऐसा लगता है कि दो सहयोगी और सहचर्य आत्मायें मिल गयीं, क्योंकि दोनों में परम दयाल जी महाराज की शिक्षा के प्रभाव के कारण हर प्रकार से मानवता धर्म की उन्नति के लिये सेवा भाव की समान उत्कन्ठा है। इसलिये मैं हमेशा की भाँति सैनफर्नाडो में इनके घर पर ही ठहरा।

श्री यतीन्द्र रामप्रसाद और उनका परिवार अत्यन्त धार्मिक हैं और विशेषकर सुमिरन, ध्यान, भजन में गहरी रुचि रखता है। इस बार श्री कृष्ण मन्दिर के अधिकारियों ने अपनी ओर से मुझे निमन्त्रित किया था कि मैं पाँच दिन लगातार सानफर्नांडो में रात्रि के समय कृष्ण मन्दिर में आम जनता के लिये भगवद् गीता पर सत्संग दूं। इसके साथ-साथ यह भी तय था कि प्रातःकाल पाँच बजे १२ सितम्बर से लेकर १५ सितम्बर तक साधना शिविर रखा जाये और इच्छुक सत्संगियों को सुमिरन, ध्यान और भजन का अभ्यास कराया जाये। पांच दिन सायंकाल के सत्संगों में सत्संगी भारी संख्या में दूर-दूर से आकर लाभान्वित होते रहे। इस मन्दिर में न केवल हिन्दू बल्कि ईसाई और अन्य धर्मों के लोग भी शामिल हुए।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

यहां के हिन्दू तीन सौ वर्षों से इस देश के निवासी हैं। उनकी संख्या करीबन ४५ प्रतिशत है। इनमें सत् सनातन धर्म के प्रति अटल विश्वास और श्रद्धा है। छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक मन्दिर में सत्संग सुनने में और पूजा आदि में बड़े उल्लास से शामिल होते हैं। इसके साथ ही साथ उनका धर्म का दृष्टिकोण भी बहुत व्यापक हैं। ट्रिनीडाड के सभी धर्मों के लोग आपस में सहयोग से रहते हैं। इसलिये मानवता धर्म का व्यापक दृष्टिकोण उन सभी के लिये प्रिय है। पाँचों दिन मैंने उन्हें भगवद्गीता के आधार पर सत् सनातन धर्म और राधास्वामी मत एवं मानवता धर्म के सार को समझाकर यह बताने की कोशिश की कि राधास्वामी योग सनातन धर्म के विकास की आखरी सीढ़ी है। इन सत्संगों से प्रभावित होकर बहुत से बुद्धिजीवी मेरे नजदीक आये और उन्होंने सुमिरन,ध्यान,भजन सीखने की इच्छा प्रगट की। इन पांच सत्संगों में ऐसे लगा कि कृष्ण मन्दिर से सम्बन्धित सभी भक्त और जिज्ञासु एक परिवार है। इस बार उनके प्रेम में बहुत सच्चाई और गहराई थी। अन्तिम दिन उनके चेहरे पर उदासी थी, जिससे ये जाहर होता था कि उन्हें मेरी विदाई खल रही थी।

हर रोज रात्रि को दस बजे के करीब सत्संग से फारिग होकर हम श्री विश्वामित्र के घर आ जाते थे। उनका सारा परिवार विशेषकर वह और उनकी पत्नी हर रोज सत्संग में मेरे साथ जाते थे। प्रातः काल ठीक ५ बजे श्रीमती शान्ति मराज मुझे मन्दिर ले जाने के लिये बेचैन रहती थी। उनके पड़ौस में एक डाक्टर और डाक्टर पत्नी भी हमारे साथ रोजाना साधना शिविर में शामिल होने के लिये पौने पांच बजे

तैयार होकर जाते थे। हम ५ बजने से ५ मिनट पहले ही कृष्णमन्दिर पहुँच जाते थे। हमारे पहुंचने से पहले ही बीसियों कारें मन्दिर के सामने पहुंच चुकी होती थीं। कम से कम ४० व्यक्ति लगातार साधना शिविर में शामिल होते रहे। इन सभी लोगों को बहुत लाभ हुआ। पहले मैं उन्हें सुमिरन, ध्यान, भजन का महत्व बताता था और समाधि में जाने से पहले शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तैयारी की विधि बताता था। और अन्त में उन्हें ३ बन्द लगवाकर समाधि में बैठाना था। मैं स्वयं कुछ समय तक समाधि में रहने के बाद उठकर एक या आधे मिनट के लिये हर एक सत्संगी के पास जाकर उनके सिर पर हाथ रखता था। सभी साधक जब समाधि से उठते थे, अपने अनुभव को बताते थे और सभी को आनन्द और शान्ति का अनुभव होता था। हर रोज पिछले दिन से ज्यादा साधक आने लगे। मैंने इन दिनों की समाधि में जो कुछ कहा और उनको जो हिदायतें दी, वे कैसेट में रिकार्ड की गयीं ताकि मेरी गैरहाजिरी में सभी साधक उसे सुनकर रोजाना अभ्यास किया करें।

यह सामूहिक समाधि व्यक्तिगत समाधि को आगे बढ़ाती है और व्यक्तिगत समाधि सामूहिक समाधि को सहायता देती है और वातावरण शुद्ध करती है

मैंने पहले भी आपको बताया था कि भारत में सामूहिक समाधि का रिवाज कम है। मैं चाहता हूँ कि हमारे सभी केंद्रों पर सामूहिक समाधि की प्रथा जारी की जाये। सनफर्नांडो में लोग ४०-५० मील से भी अधिक दूर से प्रात: काल पाँच बजे साधना शिविर के लिये आते थे। सभी को बहुत अच्छे अनुभव होते थे। इस दैनिक समाधि को जारी रखने के लिये मैंने

यतीन्द्रनाथ रामप्रसाद को और लीला रामप्रसाद को नियत किया है। उनका यह आग्रह था कि मैं स्वय सानफर्नाडो में लम्बे अरसे के लिये रहकर उनका मार्गदर्शन करूँ। मैंने उनको वचन दिया कि मैं इस काम के लिये आचार्य शब्दानन्द को एक महीना के लिये भेज दूंगा।

१६ सितम्वर को मुझे प्रातःकाल ६ बजे के करीब पोर्ट आफ स्पेन के हवाई अड्डे से न्यूयार्क होते हुए वाशिगटन डी० सी० पहुँचना था क्योंकि भाग्य माताजी का आपरेशन १८ सितम्वर को होना निश्चित हो चुका था। १५ सितम्बर की सायंकाल ही एक खराब सूचना मिली कि ट्रिनीडाड के आस-पास से Hugo (ह्यूजो) नाम का तूफान गुजर रहा था और उसके कारण सभी उड़ानें स्थगित कर दी गई थी। मेरे मन में यह धारणा हुई कि किसी न किसी प्रकार से मुझे १६ सित० की सायंकाल तक वाशिगटन डी. सी. अवश्य पहुचना चाहिए मुझे पोर्ट आफ स्पेन से पैन अमेरिकन (Pan American) उड़ान से जाना था। सौभाग्यवश केवल यही उड़ान स्थगित नहीं हुई थी क्योंकि पैन अमेरिकन के अधिकारियों ने इस उड़ान को तूफान से बचाकर दक्षिणी अमेरिका कराकस हवाई अड्डे से एक हजार मील का चक्कर लगाकर न्यूयार्क पहुचने का आदेश दिया था। मैं यह बात आपको इसलिये बता रहा हूँ कि यदि कोई काम दृढ संकल्प से और सद्भावना से किया जाये तो कुदरत सभी रुकावटों को दूर कर देती है। यही कारण है कि सत्संगियों की सभी कामनायें विश्वास और शुभ भावना के कारण पूरी हो जाती हैं क्योंकि आम आदमी को अपने पर विश्वास नहीं रहता, इसलिये वह बाहर का सहारा ढूंढ़ता है। वह सहारा उसका इष्ट हो सकता है। चाहे वह

इष्ट जीवित गुरु का हो या किसी देवी-देवता या मूर्ति का हो। जब पत्थर की मूर्ति को इष्ट मानने से और उस पर विश्वास रखने से मनोकामनायें पूरी होती हैं तो कोई कारण नहीं कि जीवित गुरु की जीवित मूर्ति को इष्ट मानकर उसका ध्यान करते हुए इच्छाऐं पूरी न हों। एक व्यक्ति पत्थर की मूर्ति में विश्वास रखकर उसे साक्षात् राम या कृष्ण या देवी मानता है उसी विश्वास के कारण उसकी मन की मुरादें पूरी होती हैं, अगर कोई व्यक्ति उस मूर्ति पर जूते लगाये या उस का अपमान करे तो वह मूर्ति उसे हानि नहीं पहुंचायेगी किन्तु विश्वास रखने वाले व्यक्ति को उससे लाभ अवश्य होगा।

इसी प्रकार जो व्यक्ति जीवित गुरु को साक्षात् परमतत्व मानकर अपने आपको शरणागत कर देता है उसकी न ही केवल इच्छाओं की पूर्ति होती है. बल्कि वह जीवन मुक्त अवस्था को भी प्राप्त कर सकता है। जहाँ तक दुनियावी इच्छाओं की पूर्ति का सम्बन्ध हैं आप किसी भी जड़ मूर्ति पत्थर या देवी-देवता को इष्ट बनाकर काम चला सकते हैं किन्तु आपका यह इष्ट आपको परमधाम नहीं पहुंचा सकता है और न ही जीवन मुक्त अवस्था दिला सकता है। इसलिये देवी-देवताओं और मूर्तियों की भक्ति अधूरी होती है और जीव को जन्म-मरण के चक्कर से आजादी नहीं दिला सकती। ये भक्ति नाम की भक्ति नहीं परमतत्व की भक्ति नहीं, बल्कि एक सीमित मूर्ति या रूप की भक्ति है। किन्तु राधास्वामी मत में पूर्ण या पराभक्ति का आदेश दिया गया है। दातादयाल जी महाराज ने इस पराभक्ति की तरफ इशारा करते हुये कहा है :—

एक नाम से सब कुछ मिलता,नवनिधि सिद्धि शक्ति।
जीते जी नर पावे मुक्ति करे, जो नाम की भक्ति॥

मेरे प्यारो ! एक सद्गुरु वक्त दूसरे सद्गुरु वक्त को जीते जी अपना उत्तराधिकारी बनाता है। इसलिये जब वह स्वयं चोला छोड़ जाता है तो उसका उत्तराधिकारी उसी के संस्कार लेकर और स्वयं गुरुमय होकर सत्संगियों को प्रेरणा देता है और उनको यह ज्ञान देता है कि गुरु का रूप भले ही बदल गया हो किन्तु नये रूप में उसका अविनाशी नाम रूपी तत्व ज्यों का त्यों रहता है। जो सत्संगी इस बात को समझ जाता है और वर्तमान सद्गुरु का दिवंगत सद्गुरु का साक्षात् रूप मान लेता है उसके लोक और परलोक दोनों बन जाते हैं। जो ऐसा विश्वास नहीं रखते और वर्तमान गुरु को दिवंगत गुरु से अलग समझते हैं, वह कहीं के नहीं रहते हैं।

मेरे जीवन के अनुभव इस बात की पुष्ट करते हैं कि परा भक्ति की मस्ती में रहने से दुनियाबी काम अपने आप मौज से होने लगते हैं। यही कारण था कि जबरदस्त तूफान के होते हुये भी मेरा हवाई जहाज ठीक समय पर न्यूयार्क पहुंचा और मैं सायंकाल करीब ४ बजे १६ सित० को ही वाशिंगटन डी सी. पहुंच गया। १८ सितम्बर को हमें ११ बजे फेयरफैक्स अस्पताल में माता जी को आपरेशन के लिये ले जाकर पहुंचना था। यह अस्पताल वाशिंगटन डी. सी. और बर्जीनियाँ के इलाके में सबसे बड़ अस्पतालों में से एक है। जिस इन्श्योरेन्स कम्पनी में हमारा स्वास्थ्य का बीमा हुआ है वह ऐक व्यापक कम्पनी है। उनके अस्पताल अमेरिका के बड़े-बड़े शहरों में हैं, किन्तु इस इलाके में उनका अपना बड़ा अस्पताल नहीं है इसलिये उन्होंने फेयरफैक्स अस्पताल में आपरेशन रखा। यह आपरेशन विशेषज्ञ शल्य चिकित्सक (सर्जन) डा० ऐलवर्ट को करना था। आपरेशन तो सफल रहा। यद्यपि ऐक-दो दिन के

लिये भाग्य माताजी की हालत शोचनीय हो गयी थी। वे अस्पताल में दस दिन तक रहीं। इस दौरान दो ऐसी घटनायें हुई जिनकी मैं आपको सूचनाऐं देना चाहता हूँ। परमदयाल जी कहा करते थे कि सन्त लोगों को चाहिये कि अपने सच्चे अनुभवों को सत्संगियों के सामने रखे। प्रायः सत्संगी लोग अपने गुरु की अच्छाइयों के गुण गाया करते हैं और कई कहानियाँ बनाकर उनको बहुत ऊंचा दिखाते हैं। सच तो यह है कि ऊंचे से ऊंचा परम सन्त और अवतार भी कभी-कभी भावावेश में आ जाता है। लेकिन वह तुरन्त अपने इस अस्थाई कमजोरी को दूर कर देता है और फिर समता की अवस्था में आ जाता है।

कई बार परमदयाल जी अपनी मिसालें देते थे और कहते थे कि शब्दाभ्यास की ऊंची से ऊंची अवस्था पर पहुँचने के बाद भी वह सुख-दुख के अनुभव किया करते थे। और यह अनुभव कभी-कभी उनकी समाधि में भी बाधा डालते थे। इसी सम्बन्ध में मैं आपसे अपना निजी अनुभव बताना चाहता हूँ। मैं बचपन से ही अधिकतर समता में रहता था। मेरा अपने पिताजी से बहुत प्रेम था। किन्तु मैं उनके मरने पर भी न शोकातुर हुआ, न रोया। अपनी माता के देहान्त पर भी मुझे दुख नही हुआ। हालाँकि मेरा माताजी से बहुत प्रेम था और मैंने बचपन में उनकी बहुत सेवा की। जब हम भाग्य माता जी को फेयरफैक्स अस्पताल में आपरेशन की तैयारी वाले कमरे में ले गये तो हमारे साथ आचार्य श्रीमती थैल्मा भी थी। वह भाग्य माता जी के साथ उनके कपड़ों की छोटी सी अटैची लेकर उस कमरे में गयीं जहाँ पर नर्सों ने माताजी को आपरेशन के लिये तैयार करना था। मैं उस कमरे के

बाहर कुर्सी पर बैठा प्रतीक्षा करता रहा। भाग्य माताजी के ब्लैडप्रेशर आदि की परीक्षा करने में और उनके कपड़े बदलने में करीब ४० मिनट लगे। पौने बारह बजे के आस पास वह थैल्मा के साथ बाहर निकलीं। उन्होंने अस्पताल द्वारा दिया चोगा पहना हुआ था और सिर पर प्लास्टिक की टोपी पहने हुई थीं जब वह बाहर निकलीं और डा० एल्बर्टस के कमरे की ओर जाने लगीं तो उन्होंने मुझे बड़े आत्म विश्वास से हाथ जोड़कर राधास्वामी कहा।

जब मैंने उन पर दृष्टि डाली, उनकी वेशभूषा को देखा और निर्भय होकर राधास्वामी कहने के बाद शल्य चिकित्सक के कमरे की ओर मन्द गति से चलते हुए देखा, तो मुझे एक धक्का सा लगा। मुझे ऐसा लगा कि जैसे मैं किसी बकरी को ब्याध के पास भेज रहा हूँ। ऐसा विचार आते ही मेरी आँखों में आंसू भर आये. मेरी करुणा उमड़ पड़ी और मेरे हृदय से उनके जीवन की रक्षा के लिये हार्दिक आशीर्वाद निकला। मेरे आँसू बाहर नहीं आये और अन्दर ही रह गये। मैं समझता हूँ कि यदि मेरी समता की जिन्दगी में भी एक दयनीय परिस्थिति में यह भावुक अवस्था उमड़ सकती है तो आम आदमी की दशा क्या हो सकती है? मैं फौरन संभल गया और थोड़ी देर के लिये सहज समाधि में चला गया।

मैं और आचार्या थैल्मा थोड़ी देर के लिये अस्पताल के मुख्य विश्रामालय में चले गये, जहाँ पर रोगियों के सम्बन्धी प्रतीक्षा के लिये बैठे थे। यह प्रतीक्षालय बहुत ही सुन्दर कुर्सियों और गद्देदार बैंचों से सजा हुआ था। हमें मालूम था कि भाग्य माताजी की शल्य चिकित्सा १ बजे से आरम्भ होगी। इसलिये हम दोपहर के भोजन के लिये उसी अस्पताल

में रेस्टोरेन्ट में चले गये, जहाँ पर हर एक व्यक्ति अपना भोजन परोसकर और अपने विशेष प्रकार के भोजन के अनुसार पैसे देकर कुर्सी मेजों पर भोजन करते हैं। शाकाहारी भोजन बहुतायत में था, हम दोनों ने अपने भोजन की थालियां भरकर और उसकी कीमत अदा करके उस विशाल भोजनालय में एक कौने में अपना स्थान ग्रहण किया। सौभाग्यवश हमारी मेज पर मेरे सामने एक भारतीय व्यक्ति बैठकर भोजन कर रहा था। उसके सफेद बैग पर उसका नाम S. K. Sharma लिखा था। इससे जाहिर होता था कि वह व्यक्ति अस्पताल का कर्मचारी है। थोड़ी ही देर में मेरा उससे वार्तालाप होने लगा और उसने कहा, मेरा नाम शिवकुमार शर्मा है। मैं इस अस्पताल में दवाखाने का कर्मचारी हूँ। जब मैंने उनको कहा "मेरा नाम I. C. Sharma है।" तो उन्होंने तुरन्त उत्तर पूछते हुये कहा "क्या आप श्रीमती भाग्य शर्मा के पति हैं?" मैंने आश्चर्य से पूछा "आपको यह कैसे पता चला?" श्री शर्मा ने जवाब दिया "मैं दस मिनट पहले डा॰ एल्बर्ट के आदेश अनुसार श्रीमती भाग्य शर्मा के लिये शल्य चिकित्सा के लिये उनको बेहोशी में लाने वाली मादक औषधियाँ भेज कर आया हूँ।" उनका हमारा वार्तालाप मित्रता में बदल गया।

जब तक हम भोजन से निवृत्त होकर प्रतीक्षालय में पहुँचे दोपहर का १ बज चुका था। मैंने श्रीमती थैलमा कार्टर को उसके घर इसलिये भेज दिया कि उनकी माता सख्त बीमार थी। मैं सौफे पर बैठकर समाचार पत्र पढ़ने लगा। ठीक सवा दो बजे माइक्रोफोन पर मुझे बुलाया गया। जब मैं सूचित करने वाली महिला के पास पहुंचा तो वहाँ ठहरे हुये एक

डाक्टर ने मुझसे हाथ मिलाते हुये कहा कि डा० शर्मा ! मैं डा. एलबर्ट हूँ। मुझे आपको यह सूचना देते हुये हर्ष हो रहा है कि श्रीमती शर्मा का आपरेशन सफल हो गया है। मैंने डा० एलबर्ट को पहले कभी नहीं देखा था। हालाँकि उनसे कई बार टेलीफोन पर बातचीत हो चुकी थी। इसलिये मैंने उन्हें धन्यवाद देते हुये कहा "आप धन्य हैं, क्योंकि आप आपरेशन के तुरन्त बाद मेरे पास आ गये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।" डा० एलबर्ट ने मुस्कराकर कहा "मुझे मालूम है कि आप सन्त हैं। श्रीमती शर्मा को चौथी मंजिल पर ८ नम्बर के दो कमरों वाला प्राइवेट कमरा दे दिया गया है। अभी वह बेहोशी से धीरे-२ चेतना में आ जायेंगी। आप चार बजे तक उस कमरे में जा सकते है और उन्हें मिल सकते हैं। मैं कल प्रातःकाल ९ बजे उन्हें देखने के लिये पहुंच जाऊंगा।"

मुझे डा० एलबर्ट के प्रेम और उनकी उदारता को देखकर हर्ष हुआ। अमेरिका में और हमारे देश में भी डाक्टर अथवा शल्य चिकित्सक अपने रोगियों में इतनी दिलचस्पी नहीं लेते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि डा० एलबर्ट विशेष रूप से मानववादी हैं। वह हर रोज प्रातःकाल भाग्यमाता जी के कमरे में उन्हें देखने आते थेऔर उन्हें तसल्ली देते थे। तीसरे दिन मैंने उन्हें उसी कमरे में अमेरिका में प्रकाशित "कर्म और पुर्नजन्म सिद्धान्त" के विषय पर मेरे द्वारा लिखी पुस्तक भेंट की। इस के पढ़ने के बाद वह हमारे और निकट आ गये। उन्होंने पुस्तक की प्रशंसा की और विचार व्यक्त किया कि वह कभी न कभी अपनी पत्नी के साथ भारत आयेंगे। भाग्यमाता जी को चौथे दिन बुखार आने लगा। जब वह बुखार पांचवे दिन

भी आया तो डा० एलबर्ट को चिन्ता हुई। उन्हें यह सन्देह हुआ कि कहीं अन्दर के जख्म में मवाद न पड़ गया हो क्योंकि भाग्यमाता जी को मधुमेह की जबरदस्त शिकायत थी। और मधुमेह वाले व्यक्ति के शरीर में आपरेशन के बाद मवाद होने का अर्थ मृत्यु ही होता है। मैं आपको पुनः अपने अनुभव की बात बता रहा हूँ। पाँचवे दिन रात्रि को मुझे भी चिन्ता उत्पन्न हुई। मेरी समाधि पूरी तरह से न लग सकी। किन्तु मैंने प्रातःकाल समाधि से पहले सच्चे दिल से मालिकेकुल से सानुरोध कहा "मालिक ! चाहे कुछ भी हो भाग्यमाता जी इस अवस्था में इस संसार से विदा नहीं होना चाहिये।' प्रातः की समाधि और नाश्ते के बाद मुझे सुरेन्द्र शर्मा ने अपनी कार से फेयरफैक्स अस्पताल पहुंचा दिया। ठीक ६ बजे डा० एलबर्ट वहाँ पहुंचे। उन्होंने श्रीमती शर्मा के खून का परीक्षण कराया और तुरन्त रिपोर्ट मंगाई। उन्होंने दो घण्टे बाद रिपोर्ट देखकर मुझे टेलीफोन पर कहा "डा० शर्मा चिंता की बात नहीं है श्रीमती शर्मा को कोई आन्तरिक इंफैक्शन नहीं है। मुझे यह सुनकर तसल्ली हुई और मैं हर प्रकार से सामान्य परिचर्या करता रहा। २६ सितम्बर को डा० एलबर्ट ने श्रीमती शर्मा को अस्पताल से छुट्टी दी और ३० सितम्बर को उनके कक्ष में जाँच के लिये आने को कहा। उस जाँच के बाद डा० एलबर्ट ने कहा "अब आप जहाँ भी जाना चाहें जा सकती हैं, किन्तु आपको जाँच कराने के लिये चार महीने अमेरिका रहना पड़ेगा।

हम एक बार फिर २ अक्टूबर को डा० एलबर्ट को मिलने के लिये गये। क्योंकि मैंने ३ अक्टूबर को भारत जाने के लिये

ऐसे पूर्ण पुरुष की संगत ग्रहण करनी चाहिये जिसका हृदय इस हमदर्दी अर्थात दया और प्रेम के भावों से परिपूर्ण हो। और जो जिज्ञासू के भावों को अपने किये हुये प्रमाण या साक्षी देकर उभारता चले। ऐसे ही पूर्ण पुरुष को गुरु कहते हैं। उसी की संगत में बैठने का नाम आसन और उपासन है और यहाँ से रूहानों (आध्यात्मिक) जीवन का प्रारम्भ होता है।

आसन से अभिप्राय बैठने से है। बैठना इस प्रकार का हो कि मनुष्य शरीर, मन और कानों को पूर्णतया लगाकर सत्संग का लाभ उठाये। मन पर इतना अधिकार प्राप्त कर ले कि बार-बार पहलू (आसन) न बदलता रहे बल्कि मन को ऐसा साध ले कि वह वहाँ जमकर बैठे और तवज्जह या ध्यान को गुरु के वचनों में लगा दे।

ज्ञान नथवा प्रमाण तीन प्रकार का होता है—(१) प्रत्यक्ष प्रमाण—जो इन्द्रियों द्वारा हो (२) अनुमान प्रमाण—जो मन बुद्धि से सोच विचार कर परिणाम निकाला जाय, (३) शब्द प्रमाण जो गुरु ने अपने अनुभव से कहा हो।

जो हम देखते, सुनते, स्पर्श करते, चखते और सूंघते हैं यह तो इन्द्रियों का ज्ञान है- जो केवल हमारे अपने शरीर से सम्बन्धित है और इन्हीं इन्द्रियों के ज्ञान के अनुभव पर हम जो सोचते हैं, समझते हैं और सोच-समझकर दो को दो से जोड़ करके हम ४ होने के परिणाम पर पहुंचते हैं, वह हमार मन द्वारा ज्ञान है। पहले को ज्ञान और दूसरे को अनुमान कहते हैं। यह दोनों हमारे ही ज्ञान हैं।

यह दो तरह के ज्ञान विश्वास दिलाने वाले होते है, किन्तु जैसें जीवन के व्वावहारिक सम्बन्धों में हम अपने लिये उत्तम पुरुषों की राय की स्वभावत:आवश्यकता समझते हैं उसी तरह

आत्मिक ज्ञान के सम्बन्ध में किसी ऐसे हमदर्द (प्रेमी) महा पुरुष के अनुभव की साक्षी और उनका समर्थन चाहते रहते हैं जो हमारे भाव और विचारों को सुधार के साथ समर्थन करता हुआ अपने प्रमाण देकर हमको पूर्ण विश्वास करा दे कि हमारा सोचना गलत नहीं है, वह गुरु है। इस गुरु के अनुभव का नाम शब्द प्रमाण है। ज्ञान, अनुभव और शब्द तीन प्रकार के अनुभव हैं और तीनों ही प्रमाण हैं। इन्द्रियों का ज्ञान, ज्ञान प्रमाण है। मन का अनुमान अनुमान प्रमाण है। गुरु की गवाही या शब्द, शब्द प्रमाण है।

इन तीनों प्रमाणों का अपना-अपना महत्व है और तीनों ही से हमको काम लेना पड़ता है।

बहुत से लोग दुनियाँ में ऐसे हैं जो केवल दो ही प्रमाण मानते है अर्थात् इन्द्रियों के ज्ञान को और मन के अनुमान को। उनके मतानुसार दो प्रकार का ज्ञान पर्याप्त है। तीसरे की आवश्यकता वह नहीं समझते मगर यह लोग गलती पर हैं।

शब्द प्रमाण की आवश्यकता को तो हमने इसी वचन हमदर्दी के प्रारम्भ में थोड़ा सा वर्णन कर दिया है किन्तु सम्भव है कोई व्यक्ति उसे पर्याप्त न समझे। इस कारण और भी कुछ कहने की आवश्यकता है।

तुमने जन्म लिया। जन्म लेने का तुमको ज्ञान है। ज्ञान और अनुमान दोनों ही इसको प्रमाणित करते हैं। तुम देखते हो कि मनुष्य जन्म लेते हैं। तुम अनुमान करते हो कि तुमने भी जन्म लिया है किंतु तुमको यह ज्ञान नहीं है कि तुम कब, किस दिन,किस दशा में और कहाँ उत्पन्न हुए थे। उसके लिये दूसरों की गवाही आवश्यक समझी जाती है। यह वह विशेष बात हैं कि जहाँ तुम्हारी दाल प्रारम्भ में नहीं गलती। सम्भव

(माह अप्रैल के पेज १२ से आगे राधास्वामी योग)

एक स्थानी दोनों ही हैं। सामान्य रीति से तो वह सर्व स्थानी है और विशेष रीति से वह एक स्थानी है यही एक स्थानीपना उनके रूप और नाम का विशेष करके कारण बना हुआ है।

जिसको जड़ और चेतन का समूह कहा जाता है वह यही मंडल है, इसमें जो विशेष रूप से शक्ति रहती है वह धनी है।

हमने ऊपर केवल एक चन्द्र मंडल को व्याख्या की है। जो बात इस पर लागू आती है, वही सबके सम्बन्ध में समझो। यदि यह भी समझ में न आये तो फिर अपनी ओर दृष्टि करो तुम जिस मण्डल में रहते हो वह शरीर मन्डल है। तुम एड़ी से लेकर चोटी तक उसमें व्यापक हो। तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है। लेकिन इस शरीर में व्यापक रहते हुए भी तुम एक स्थानी भी हो। तुम्हारी शक्ति का अधिक भाग तुम्हारे मस्तिष्क में रहता है और तुम्हारी मानसिक दशा ही तुमको अन्य जीवों से पहचान कराती है। तुम उसके धनी हो, शरीर तुम्हारा मण्डल है। तुम शरीर में सर्व स्थानी और एक स्थानी हैसियत से रहते हो। शरीर तुमको नहीं जानता मगर तुम शरीर को जानते हो। इसलिये तुम उसके धनी हो। यह शरीर तुम्हारा मण्डल है। इस मण्डल में तुम अधिकतर सिर में रहते हो।यही तुम्हारा धाम है और जो कुछ तुम इस मंडल का काम करते हो वह तुम्हारी लीला है।

यह तुमने समझ लिया। इसके समझने में शायद कमी न रही होगी। अब और आगे बढ़ो।

यह गोलाकार ब्रह्मान्ड जो सर्व व्यापक मण्डल है ब्रह्म या ईश्वर का शरीर है। इसमें ब्रह्म या ईश्वर सर्वस्थानी या एक स्थानी रूप से रहता है। यह स्थान ब्रह्मण्ड का सिर या चोटी कहलाता है। इसके सिर या चोटी में विशेष शक्ति है औरयही विशेष या मुख्य शक्ति इस ब्रह्माण्ड के मंडल की धनी है और

उसका व्यवहार उसकी लीला है।

तुम में और ब्रह्म में समानता है। अन्तर केवल इतना है कि वह बड़ा है और तुम छोटे हो। इसमें असीमित ज्ञान है, तुम में सीमित ज्ञान है, किन्तु इसके कारण समानता में कोई अन्तर नहीं आता।

जहाँ किसी वस्तु का मण्डल होगा वहाँ, उसका कोई न कोई धनी अवश्य होगा। मण्डल की मौजूदगी स्वय धनी के अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है। माद्दा के मण्डल का भी धनी है और वह माया शक्ति है जो इसके व्यवहार की व्यवस्था करती रहती है। माद्दा के मंडल में स्वयं व्यवहार के चिन्ह पाये जाते हैं। इससे केवल अज्ञानी ही इन्कार कर सकते हैं। जिनकी थोड़ी सी भी बुद्धि है वह भूलकर भी इन्कार का शब्द जिव्हा पर न लायेंगे।

प्राचीन ऋषि इस प्राकृतिक सिद्धान्त से भलीभाँति भिज्ञ थे। उस समय की प्रचलित भाषा में उन्होंने उसके समझाने का अत्यन्त प्रयत्न किया था। मगर फिर भी लोग उनकी बातों को न समझ सके। अब राधास्वामी मत उन्हीं बातों की व्याख्या करके अपने अनुयायियों को आदर्श के समझाने की व्यवस्था करता है।

वृहदारण्यक उपनिषद ने शरीर,मन और तत्वों के मन्डलों को दृष्टि में रखकर पन्ने के पन्ने इसी एक विचार से भर दिये हैं, किन्तु कठिनता तो यह है कि किसी का हृदय उनको वाणी की ओर ध्यान के साथ रुझान नहीं करता वरना वह रहस्य सरलता से क्षण भर में समझ में आ जाता है।

उपनिषद कहते हैं -"जो आँख नाक, कान, जिह्वा और चर्म को व्यवस्था में रखता है और आंख नाक कान, जिव्हा और चर्म जिसके शरीर हैं और आँख, नाक, कान, जिह्वा

और चर्म जिसे नहीं जानते वही तेरा अन्तरयामी आत्मा है ।

“जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में रहकर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को व्यवस्था में रखता है, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी जिसके शरीर हैं वही तेरा अन्तरयामी है ।”

“जो चन्द्र सूर्य्य, चो, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, बिजली, तारा, गण, मन, बुद्धि आदि में रहकर इन सबको व्यवस्था में रखता है जिसे यह सब नहीं जानते और जिसके यह सब शरीर हैं, वही तेरा अन्तरयामी आत्मा है ।”

उपनिषद ने तो उसे बहुत तफसील के साथ वर्णन करने का प्रयत्न किया हैं । हमने संक्षिप्त करके इनको मिले-जुले, मगर स्पष्ट शब्दों में एकत्रित कर दिया है ताकि लम्बा चौड़ा हो जाने से मन घबरा न जाय ।

यह सब अलग-अलग मण्डल हैं और इनमें से हर मण्डल का कोई न कोई धनी है, जो उन्हें व्यवस्था में रखता है जिसके वह शरीर है और जिसे यह नहीं जानते । इसी का नाम आत्मा है । वही क्रमशः अलग-अलग उन सबका धनी है और अपने धामों में रहकर मण्डलों में व्यापक होता हुआ लीला कर रहा है ।

जिस तरह यह तमाम शक्तियाँ मण्डलों की सूरतों में ब्रह्माण्ड में हैं वैसे ही तुम्हारे मनुष्य शरीर में भी मौजूद हैं, क्योंकि ये पिण्ड हर तरह पर ब्रह्माण्ड की ही नकल हैं ।

ऋषि, मुनि इस कारण से इन सब देवताओं की असलियत को समझकर उन्हें समय-समय पर मन्त्र द्वारा बुलाकर अपना काम सिद्ध करते थे । यह अनन्त दिव्य शक्तियां हैं । वायु, वरुण, चंद्र, सूर्य्य, विष्णु, शिव आदि ऐसी ही शक्तियाँ हैं । ये

कभी भूलकर न समझो कि यह सब ईश्वर के नाम हैं। यदि इस तरह समझोगे तो फिर सम्भव नहीं है कि तुम कुछ भी वैदिक सिद्धाँतों को निश्चयपूर्वक समझ सकोगे।[1]

यह सच है कि यह तमाम देवता मय अपने मण्डलों के गुथे हुए ब्रह्माण्ड के पुर्जे (अंग) हैं। जैसे ये तुम्हारे शरीर में भी हैं। लेकिन जिस तरह तुम्हारी आंख का देवता सूर्य्य, तुम्हारे कानों के देवता दिशा से भिन्न है, वैसे ही यह वैदिक देवता भी सब अलग-अलग हैं।

मण्डलों की असलियत अब बहुत कुछ तुम्हारी समझ में आ गई होगी।

अब ब्रह्माण्ड के मण्डल की ओर दृष्टि करो, जिसमें यह तमाम पिरोये हुए है। अब हम अपने ढंग पर उपनिषदों की भाषा में इस तरह कहने का साहस करते हैं—"जो ब्रह्माण्ड में है, जो ब्रह्माण्ड को नियम से चलाता है, जिसका ब्रह्माण्ड शरीर है, जिसे ब्रह्माण्ड नहीं जानता, वही तेरा अन्तरयामी आत्मा और वही ब्रह्म है।"

इस प्रकार ब्रह्म या ईश्वर का प्रमाण राधास्वामी मत में दिया गया है।

---

[1] बहुत से लोग कहते हैं कि प्राचीन काल में ऋषियों का मन्त्र द्वारा देवताओं को बुलाना नितान्त भ्रम और ख्याली ढकोसला है। इन लोगों ने किंचित मात्र भी न मन्त्र की असलियत को समझा और न देवताओं का अर्थ समझा और न आवाहन करने के रहस्य का पता पाया। हम इसको अक्षरशः सही और सच्चा समझते हैं। हां उस विधि से जानकारी नहीं रही है। लेकिन इस कारण से यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह बिल्कुल ही गलत है। मन्त्र नाम है विधि और उपाय का। देवता दिव्य शक्तियों को कहते हैं। तुम विशेष रूप की एकाग्रता से अपने शरीर के आंख, कान आदि की शक्तियों को बुलाते

ब्रह्माण्ड में समस्त शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियां सामूहिक रूप से विद्यमान है। माद्दा की दृष्टि से कोई उसे कुछ कहता है,मानसिक दृष्टि से कुछ नाम दियाजाता है और आध्यात्मिक दृष्टि से कुछ और ही कहा जाता है। यह ब्रह्माण्ड उसी शक्ति के आसरे से रहता है और उसी शक्ति को ब्रह्म या ईश्वर कहते हैं। जो लोग उसे समझकर पूजते हैं, वह उससे शक्ति, ऐश्वर्य और ज्ञान रूपी फल पाते हैं। इनमें नाम के लिये किंचित मात्र संशय को आवश्यकता नहीं है। हाँ, विषय सूक्ष्म बहुत है, बिना सोचे समझे उसका समझ में आना कठिन है।

तथापि इससे ईश्वा का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

—:o:—

अड़तीसवां वचन

आस्तिक प्रियता और नास्तिक प्रियता

राधास्वामी योग साधन की प्रारम्भिक अवस्था में ही सच्चे जिज्ञासू को निश्चय कर लेना चाहिए कि उसके मार्ग में आस्तिकता है नास्तिकता नहीं है।

हो और उनसे अपना काम लेते हो। यह तुम प्रतिदिन करते हो। इस तरह यदि ऋषि ठीक इसी नियम के अनुसार ब्रह्माण्डी शक्तियों में अपने मन को उनसे जोड़कर उनसे काम निकालते रहे हो तो आश्चर्य ही क्या है? ब्रह्माण्ड भी तो सामूहिक रूप से हमारा ही शरीर है। हमने भ्रम में पड़कर अपने आपको जीव मान लिया है। इस कारण से न तो ब्रह्म को समझते हैं और न ब्रह्माण्ड को। सुरत शब्द का अनुभवी अभ्यासी इसकी असलियत को अब भी जान सकता है।

जो बातें इन सैंतीस वचनों में वर्णन की गई हैं उनकी असलियत और महानता को समझकर मन को आस्तिकता प्रिय बनाना चाहिये । यदि मन नास्तिकता प्रिय है तो फिर अभ्यास और साधन क्या कर सकेगा ?

जो पढ़े लिखे लोग इस आवश्यक बात को निश्चय किये बिना साधन किया करते हैं प्रायः असफल रहते हैं । बिना पढ़े लिखे आदमी निस्संदेह काम निकाल लेते हैं,क्योंकि नास्तिकता के प्रभाव में आया हुआ पढ़े लिखों का समुदाय विश्वास और श्रद्धा की जड़ काट देता है बिना पढ़े लिखों में फिर भी विश्वास रहता है । उनका मन आस्तिकताप्रिय होता है उनको नास्तिकता प्रिय नहीं लगती, किन्तु यह ज्ञान और बुद्धि का युग है । ज्ञानी और बुद्धिमानों को भी आध्यात्मिक लाभ से बंचित रखना स्वीकार नहीं है । इस विचार से उनको सद्मार्ग पर लाने के लिये पुस्तकें लिखी जा रही हैं । ज्ञान और बुद्धि के प्रमाण से समझाने का प्रयत्न किया गया है । जो अपने अन्तर में किंचित् भी ईश्वर के होने का संस्कार उभरता हुआ पायें, वह उसे दबाने का प्रयत्न न करें ।

उसमें उनकी हानि है । ऐसी हानि है कि जिसकी पूर्ति सम्भव है इस जन्म में न हो सके । इसलिये उनको अत्यन्त प्रेम के साथ निमन्त्रण दिया जाता है कि वह जिस तरह चाहें राधा स्वामी सत्संग में जाकर पहिले अपनी अच्छी तरह से सन्तुष्टि कर लें, फिर साधन में लगें ।

विद्या और बुद्धि तो सत्संग में बढ़ जायेगी । और जब अभ्यास करने लगेंगे अपने अन्दर अनुभव होंगे । उस समय फिर कहने सुनने की भी आवश्यकता न रहेगी ।

—:o:—

योग साधन की दूसरी विधि

आसन, उपासन

उन्तालीसवाँ वचन

हमदर्दी (सहानुभूति) की आवश्यकता

मनुष्य को दुनियां में हमदर्दी (सहानुभूति)की आवश्यकता है। जिस भाव को हम प्रगट करना चाहते हैं, उसके प्रगट करने के लिये यद्यपि हमदर्दी यथेष्ट शब्द नहीं है किन्तु अन्य यथेष्ठ शब्द न होने के कारण हम उस भाव के प्रगट करने के लिये इसी शब्द को प्रयोग करने के लिये बाध्य हैं।

हम गाते हुये चाहते हैं कि दूसरा व्यक्ति भी उसे सुनकर हर्षित हो और हम को उस व्यक्ति के हर्षित होने से हमारे हृदय की शक्ति, हृदय का साहस और हृदय के उत्साह वर्द्धन का लाभ मिले और यह लाभ हमारे गाने के भाव को अधिक उन्नति दे।

हम नये वस्त्र पहनते हैं। स्वयं हर्षित होते है और इच्छुक रहते हैं कि दूसरे भी हमारे अच्छे वस्त्र देखकर प्रसन्न हों और उनकी प्रसन्नता से हमारी प्रसन्नता बढ़े।

हम कविता कहते हैं। उस कविता को सुनाकर दूसरों से प्रसन्नता चाहते हैं ताकि उनकी प्रशँसा हमारी कविता कहने की योग्यता को और बढ़ा दे। इसी तरह और भी समझ लो।

यह मनुष्य के हृदय का प्राकृतिक भाव है जो बचपन से ही प्रगट होना आरम्भ हो जाता है। यह दिखावा अवश्य है किन्तु इसमें बढ़ने, ऊचा होने और निपुणता की श्रेणियां हैं। इस दृष्टि से उसे तुच्छ नहीं समझना चाहिये।

बच्चे मुस्कराते हैं। वे मुस्कराते हुये दूसरों को भी अपनी मुस्कराहट को देखकर मुस्कराना नहीं चाहते तो वे उनकी ओर से उसी समय दृष्टि फेर लेते हैं फिर उनकी ओर नहीं देखते।

इसका कारण सिवाय इसके और कुछ नहीं है कि वह सहानभूति (हमदर्दी) के इच्छुक रहते हैं। यह सहानुभूति वस्तुतः पारस्परिक प्रेम,पारस्परिक उपयुक्तता और पारस्परिक अनुकूलता का श्रेष्ठ रूप है सहानुभूति दो हृदयों में मिल जुल कर दुगनी शक्ति प्राप्त कर लेती है और उन्नति करने के नियम को शक्ति देती है जो प्रकृति की माँग है।

जहाँ इस प्रकार की पारस्परिक सहानुभूति रहती है वहाँ उन्नति होती है जहाँ सहानुभूति नहीं होती वहां उन्नति नहीं होती। जो लोग इस नियम को जानते हैं, वे ईर्ष्या, द्वेष, घृणा दोष देखने और दोष निकालने से बचते हैं क्योंकि उनके कारण हृदय के उभरते हुये भाव कुचल जाते हैं, उत्साह नहीं बढ़ता और व्यर्थ में हानि होती है। हाँ, यदि किसी के ख्याल (विचार) अमल (कर्म) और इल्म (ज्ञान) का सुधार करना हो तो सहानुभति से काम लो। तुम भी खुश और वह भी खुश। यदि यह नहीं कर सकते तो किसी के भावों को कुचलो मत। यह महापाप है। इससे हिंसा होती है और यह हिंसा महापाप है।

जिस समय मनुष्य ने अपने आपको मनन, अध्ययन, निरख अनुभव और प्रेम द्वारा आस्तिक बना लिया तो उसे

(–शेष पृष्ठ ५३ व ५४ पर)

(पेज ५४ से आगे)

है कि तुम उन्नतिशील बुद्धि के कारण हिसाब किताब लगाकर और अपनी दशा का अनुमान लगाकर आप ही किसी निश्चित परिणाम पर पहुंच सको, किंतु इसमें इतनी बड़ी आपत्ति होगी जो बवाल जान समझो जायेगी और दृढ़ विश्वास होना कठिन होगा। इसका तो उपाय यही है कि दूसरों की गवाही को मानकर विश्वास को दृढ़ करो और जो कुछ वे कहते है उसी को ध्रुव सत्य मान लो। इसमें तुम्हारी हानि ही क्या है ? फिर इनकी गवाही को लेकर अपनी ख्याली उधेड़-बुन को काम में लाओ। कोई तुमको इससे नहीं रोकता। हाँ प्रारम्भ में इस गवाही या साक्षी की आवश्यकता है।

इस प्रकार की गवाही निःस्वार्थ होती है। यह ऐसी बात कि जो व्यक्ति निःस्वार्थ होगा, उसे झूठ बोलने की आवश्यकता ही नहीं है वह झूठ बोलकर लाभ क्या उठायेगा। गुरु की साक्षी इसी प्रकार की निस्वार्थ और निष्पक्ष होती है। वह आप्त पुरुष है आप्त पुरुष सर्वदा सच्चे व निस्वार्थ होते हैं।

तीन प्रकार के ज्ञान अथवा प्रमाण का महत्व जता दिया गया। कोई बुद्धिमान मनुष्य अब इसको झूठा नहीं कहेगा।

तुमने पढ़ा लिखा, सोचा विचारा। अब उसके समर्थन की आवश्यकता हुई। उसके लिये गुरु की सेवा में जाओ। उसकी उपासना करो। उसकी सेवा और प्रेम का दम भरो। उससे हमदर्दी का लाभ उठाते हुए अपना काम बनाओ ताकि तुम्हारा ज्ञान निश्चयात्मक हो जाय, उसमें उन्नति हो, उसमें सुधार हो और साथ ही साथ तुम उनकी सहानुभूति से पुष्टि पाकर हार्दिक और मानसिक रूप से शक्तिशाली बन जाओ। और आगे के दर्जों की ओर बढ़ो और आत्मिक उन्नति के अधिकार का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त करो।

यह गुरु की हमदर्दी प्राप्त करने का रहस्य है।

चालीसवाँ वचन

गुरु की उपासना

गु = अंधेरा, रु = चांदना

गुरु किसे कहते हैं ? जो अंधेरे में चांदना करे, जो बन्धन से छुटकारा दिलाये, जो श्रवण और मनन को साक्षात्कार या निदिध्यासन तक पहुंचा दे और जो आध्यात्मिक भावनाओं को उभार कर आइडियल आदर्श या इष्टपद तक पहुंचाने की शक्ति और योग्यता रखता हो, उसी का नाम गुरु है। इसके अतिरिक्त गुरु की और कोई परिभाषा नहीं है।

एक समय की घटना है कि आगरे के सत्संग के मकान में शीशे का ग्लोब रक्खा हुआ था। एक चिड़िया उड़ती हुई आई और ऊपर की ओर से उसमें घुस गई। जब उसने देखा कि निकलने का कोई उपाय नहीं है वह बेचैन हो गई। इधर-उधर जाती रही पर फड़फड़ाती रही। निकलने की राह नहीं पाई व्याकुलता और बेचैनी के कारण उसे ऊपर की ओर का ग्लोब का मुंह दिखाई नहीं देता था। रास्ता तो थामगर वह निकल नहीं सकती थी क्योंकि दृष्टि का रुझान नीचे की ओर हो गया है। वह थक गई। ला० राजनरायन साहब (हुजूर महाराज के जामात्र) बैठे हुए थे। उन्होंने इस चिड़िया की दशा देखा चुपके से उठ। ग्लोब को टेढ़ा कर दिया। रास्ता दिखाई दे गया। उसी रास्ते चिड़िया फुर्र से उड़ गयी और ज[illegible] [illegible] राज ने प्रसन्न होकर ला० राजनरायन से कहा [illegible] इस [illegible] गुरु का काम किया है।” बात सच्ची था।”

[illegible]धन से छुड़ाना गुरु का काम है। इसी कारण [illegible]

'बन्दी छोड़' अर्थात् 'मुक्तिदाता' कहते हैं। जिसमें ऐसा गुण या शक्ति मौजूद हो वह गुरु है। गुरु निस्स्वार्थ होते हैं। वे अपना कोई स्वार्थ भाव चित्त में नहीं रखते। यही उनकी महानता है। कबीर साहब की वाणी है :—

सुख देवें दुख को हरें दूर करें अपराध।
कहें कबीर वह कब मिलें परम सनेही साध ।।१।।

मान अपमान न चित धरें, औरन को सन्मान।
जो कोई आशा करे, उपदेशहिं निहि ज्ञान ।।२।।

साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ पर छालूं अंग।
कहें कबीर निर्मल भया, साधु जन के संग ।।३।।

अलख पुरुष की आरसी, साधू ही की देह।
लखा जो चाहे अलख को, इनमें ही लख लेह ।।४।।

पारस में और सन्त में, यही अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करें, यह कर लें आप समान ।।५।।

यदि किसी आदमी को ऐसा गुरु मिल जाये तो फिर उसके भाग्य का क्या कहना है और वह सुगमता से अपना काम बना लेगा और बिना परिश्रम और कष्ट के भवसागर को पार कर लेगा। गुरु की संगत, सेवा और प्रेम के विषय में सार वचन राधास्वामी पद्य के हिदायतनामा" में यह वर्णन आया है :—

"जिन लोगों को शौक मिलने मालिक कुल का है और तहकीकात मज़हब की मंजूर है कि कौन सा मजहब सबसे आला है और तरीका भी उसका बहुत सीधा चाहते हैं, उनके वास्ते यह कलाम कहा जाता है। उनको चाहिए कि कुछ दुनिया की मुहब्बत को कम करें यानी ज़र और ज़न और औलाद की चाह तकदीर के हवाले करके अव्वल मुहब्बत फकीरों की मुकद्दम रक्खें। फकीरों में मुहब्बत उस फकीर की

करे जो शागिले शुगल सुल्तानुलअजकारे हो। या शुगल मसीरा करता हो। यानी अनहद शब्द के मारग को जानता हो। और दृष्टी की साधना जिसने करी हो। और मुरदमक चश्म यानी दोनों तिलों को खींचकर शुगल की मदद से एक किया हो। और आवाज आसमानी रूह को चढाता हो। और जो ऐसे फकीर कामयाब हों तो जिकलब लूब पासुनफास वालों की तलाश करें। उसकी सुहबत से भी सफाई दिल और कमजोरी नफस अम्मारह की होगी। और कुछ लज्जत अन्दरूनी हासिल होगी। लेकिन वो फायदा कि रूह के चढाने का है वह तो तरीका सुल्तानुबकार ही से हासिल होगा।”

अब चाहिए कि ऐसे फकीर की खिदमत में जाकर उनसे मुहब्बत पैदा करो और उनकी खिदमतगुजारी में चुस्त और चालाक रहो और तन से मन धन से बहर सूरत उनको अपने ऊपर मेहरबान और मुतवज्जह कर लो और दर्शन उनका दिल और दीदे से घण्टे दो घण्टे बराबर करते रहो यानी अपनी आंखों से उनकी आंखों को ताकते रहो और जिस कदर ताकत अपनी देखो पलक से पलक न लगाओ। और इस कसरत को रोज ज्यादा करते हो जिस रोज और जिस वक्त नजर मेहरआलूद उनकी तुम पर पड़ेगी उससे सफाई दिल की फौरन होगी और जब वे मेहर करके अपनी मौज व मर्जी से शगल वाला का उपदेश करें तो रूह तुम्हारी आवाज आसमानी को पकड़ेगी और मुनासिब है कि तुम भी इस शगल को रोजमर्रा बिना नागा चार बार दो बार जिस कदर फुरसत मिले करते रहो और जो दिल तुम्हारा कबूल न करे और वसवसा और खदसा और गुनावन बे फायदा उठावे तो फरयाद मुर्शिदी के आगे करो। और फिर उसी शगल में मेहनत रखो उनकी तवज्जह और तुम्हारी मेहनत से रोज बरोज तरक्की होगी र जल्दी और इजतराब न करना क्योंकि ताजील कारे शयाती व आहिस्ता आहिस्ता हासिल होना मुफीद पड़ेगा। और जल्दी

(—शेष अगले अंक में)

।। मनुष्य बनो ।।

(पृष्ठ ५२ से आगे)

और भाग्यमाता जी ने हमारे छोटे सुपुत्र प्रियदर्शी के पास एटलाटाजा ीया जाने के लिये हवाई जहाज में सीटें रिजर्व करा ली थी। अब मैंने डा० एलबर्ट को कहा :—एटलान्टा के हवाई अड्डे पर भाग्यमाता जी के लिये पहिये वाली कुर्सी के लिये प्रार्थना की गई है। उन्होंने तुरन्त हैरान होकर कहा "इसके लिये किसी कुर्सी की आवश्यकता नहीं है। इनको पैदल ही चलना चाहिये।

मेरे परमप्रिय सत्संगियो ! मैं इन पंक्तियों को लिखते समय ऐसा महसूस कर रहा हूँ कि मैं अपने निकटतम संबंधियों से घरेलू बातचीत कर रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि ऊपर के अनुभवों में आपके भाव मेरे साथ थे। आप निःसन्देह विशाल मानव परिवार के सदस्य है। और इस परिवार का रिश्ता आत्मिक होने के कारण खून के रिश्ते से ज्यादा गहरा है। मुझे पूरी आशा है कि आप इस मासिक सन्देश को पढ़कर आपस में एक अगाध प्रेम का अनुभव करेंगे। और हरएक सत्संगी दूसरे को अपना ही अंश समझकर उससे सच्चा प्यार करेगा। यह मासिक सन्देश प्रेम का विशेष सन्देश है। राधा स्वामी मत या मानवता धर्म पराप्रेम का मार्ग है,दयाल पुरुष अनामी, राधास्वामी दयाल स्वयं प्रेम का भण्डार है। इस जगत की रचना प्रेम के उमड़ने के कारण हुई है। हम सभी प्रेम में विरह का अनुभव करने क लिये अपने निजधाम से इस जगत में आये हैं उसी प्रेम के वश में हम मालिकेकुल से मिलने के लिये तड़फ रहे हैं।

इसी तड़प को ही राधास्वामी दयाल ने 'तपनकरारी कहा है।' इसी तड़प से प्रेरित होकर धारा में बहता हुआ जीव उलट कर राधा बनता है जब तक राधा का स्वामी से मिलन नहीं होता तब तक उसकी तड़प नही मिटती, किन्तु राधा

बनने के बाद धारा में बहता हुआ जीव राधास्वामी अवस्था को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। स्वामी जी महाराज ने इसी सचाई को बयान करते हुए कहा है :—

स्वामी बैठक अद्भुती, राधा निरखनहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार॥

जब राधा स्वामी को मिलाने की अधिकारिणी हो जाती है। सुरत निरत हो जाती है। यह निरत अवस्था काल से परे होती है। इस अवस्था में न जाप होता है न अलाप होता है, न अनहद शब्द होता है। कबीर साहब ने इसको व्याख्या करते हुए कहा हैं :— जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाय।
सुरत स्वामी शब्द में, बाको काल न खाय॥

ऐ मेरे प्यारे सत्संगियो ! इस अवस्था से भी ऊपर एक और अवस्था है जिसको व्याख्या मैं अगले मासिक सन्देश में करूंगा। उस अवस्था में पहुंचने के बाद जीव सदा सर्वदा के लिये मालिककुल से मिल जाता है। इस अवस्था पर पहुँचने वाला जीव, जीव नहीं रहता। राधा, राधा नहीं रहती। स्वामी नहीं रहता। यहां पर हर प्रकार का कर्म हमेशा के लिये समाप्त हो जाता है। यही मंजिल मकसूद है जो कर्म से ज्ञान से और साधारण भक्ति मार्ग से भी परे है। इन शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की सद्भावना देता हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आपको ऐसी प्रेरणा मिले कि आप प्रेम मय हो जायें। आपके घरों में शान्ति सुख और आनन्द का राज्य रहे और आप लौकिक सुख भोगने के बाद आलौकिक पूर्णानन्द प्राप्त करें।

सबको राधास्वामी !

आपका
फकीरमय मानव

(पृष्ठ ४० का शेष)

मांटी का पिंड छूट जायेगा औ यह सकल विकारा।
ज्यों जल माहिं रहत है पुरइन, ऐसे हंस हमारा ॥३॥
लोक हमारे अइहो हंसा, तब सुख पइहौ भाई।
सुख सागर स्नान करोगे, अजर अमर होइ जाई ॥४॥
कहें कबीर सुनो धर्म दासा, हंसन करो बधाई।
सेत सिंहासन बैठक देहों, जुग जुग राज कराई ॥५॥
मालिक सबको शान्ति प्रदान करे।

—:०:—

इसे भी पढ़ें

इस अंक में हम अप्रैल एवं मई का अंक एक साथ प्रकाशित कर रहे हैं। इसका कारण कागज व डाक की लगातार बढ़ती महगाई एवं हमारे प्रेमी पाठकों से इसका चन्दा प्राप्त न होना है। जिसकी बजह से "मनुष्य बनो" को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। क्योंकि इसका अपना कोई फन्ड नहीं है। और हमें कुछ ही भाइयों से इसके लिये योगदान मिल पाता है। अतः हम पुनः अपने प्रेमी भाइयों से यह अनुरोध करते हैं कि वे पत्रिका के ज्यादा से ज्यादा ग्राहक बनाने में हमारी मदद करें ताकि हम गुरु के प्रवचनों को जनता में अधिक से अधिक फैलाकर देश में शान्ति का वातावरण बना सकें। यह तभी सम्भव होगा, जब सभी भाई अपना-अपना वार्षिक शुल्क समय से भेजते रहें और इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाते रहें।

—सम्पादक

—:०:—

भूल सुधार

माह फरवरी में श्रीमती गीता देवी गुप्ता ने पत्रिका के लिए १००) भेजे थे जो गल्ती से छपने से रह गया है। क्षमा करें।

—प्रकाशक

धन्यवाद !

※ श्री रमेश कुमार जी, नई रोड कटनी ने १००) एवं श्री जगतराम झावा मालपुर रोड होशियारपुर ने १००/–'मनुष्य बनो' की सहायतार्थ भेजे हैं। हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।

※ श्री हनमन्तु चपरासी, मदनूर ने अपने पुत्र के विवाह पर 'मनुष्य बनो' की सहायतार्थ २५/- भेजे हैं। हम मालिक से वर-बधु की मंगल कामना करते हैं।

—प्रकाशक

※ श्री सत्यदेव सिंह जी की पत्नी दिनांक १५-३-९० को अपना चोला छोड़ परलोक सिधार गई हैं। मालिक से कामना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें एवं उनके परिवार को इस कष्ट को सहने की शक्त प्रदान करे। आपने पत्रिका हेतु ११) भेजे हैं।

शोक समाचार

दुःख के साथ सूचित करते हैं कि हजूर आनन्दराव जी महाराज सिकन्दराबाद अपना चोला छोड़ परमधाम को चले गये हैं। 'मनुष्य बनो' परिवार मालिक से प्रार्थना करता है कि हजूर महाराज की आत्मा को शान्ति प्रदान करें एवं उनके परिवार को इस अथाह दुःख को सहने को शान्ति प्रदान करें।

सम्पादक

।। मनुष्य बनो ।।

R. S.

गाफिल शब्दावली से—

शब्द

खुद ब खुद टिकता नहीं, यह मन टिकाया जाता है।
पानी बहता नीचे को, ऊपर चढ़ाया जाता है।१।

जिसकी जो आदत है वैसे कर्म वह करना सदा।
नाम लेकर गुरु से, मन को बनाया जाता है।२।

बाहरी संगत से यह मन, हो गया बाहरमुखी।
अन्तरी धुनि पकड़ कर, इसको ठहराया जाता है।३।

दौड़ता फिरता है यह मन, इन्द्रियों के भोग को।
नाम के अंकुश से इस, मन को हटाया जाता है।४।

काम क्रोध और लोभ मोह के,जाल में मन फंस गया।
ज्ञान-विवेक और भक्ति से,इनको छुड़ाया जाता है।५।

यम नियम की पालना, करनी आवश्यक पड़ती है।
चौथे पद में पहुंच कर, अनहद सुनाया जाता है।६।

जिस प्रभु को ढूंढ़ता फिरता पहाड़ों में है तू।
वह प्रभु गुरु दया से, घट में दिखाया जाता है।७।

अपने आपे का पता, मिलता नहीं है गैर से।
'गाफिल' अपना आपा अपने,में ही पाया जाता है।८।

—:o:—

६-

७ — मैं

क

दिनांक १

प्रकाशक के हस्ताक्षर

७२

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कायालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 1769

श्रीमान Sri Satya Narayan
H.No. 1-8-213/1
Peduer Short Road
Secunderabad- AP

यहाँ,
यहाँ
हर एक
न कल
इस धर
सबक
रहे

ती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिटर्स, लेखराज नगर, अलीगढ